□□□□□□□□□□ □□□□□

जनसत्ता 22 फरवरी, 2012: इस वर्ष चौदह फरवरी को छत्तीसगढ़ के सरकारी स्कूलों में 'मातृ-पितृ पूजन' दिवस मनाया गया। इसमें वैसे बहुत आपत्ति की बात नहीं होती, मगर यह दिन मनाने की योजना वेलेंटाइन दिवस के मुकाबले बनाई गई और अल्पसंख्यक स्कूलों की भावना का बिना खयाल किए उनसे भी अपेक्षा की गई कि वे इस दिन को इसी तरह मनाएं। इसके पहले मध्यप्रदेश और गुजरात के स्कूलों में सूर्य नमस्कार और मध्यप्रदेश में गीता सार की पढ़ाई को इसी तरह अनिवार्य बनाने की कोशिश हुई थी।

मध्यप्रदेश का गो-हत्या निषेध कानून अपने सख्त और मानवाधिकार का हनन करते दिखने वाले प्रावधानों के कारण पहले ही काफी चर्चित हो चुका है। गुजरात में हाल के समय में हाईकोर्ट ने 2002 के दंगा पीड़ितों को मुआवजा देने के मामले में अदालत के आदेश का पालन न करने के लिए राज्य प्रशासन के खिलाफ अवमानना का नोटिस जारी किया है, जबकि उन्हीं दंगों में क्षतिग्रस्त धर्मस्थलों के पुनर्निर्माण की खातिर सहायता न देने के लिए राज्य सरकार को फटकार लगाई है।

इन दंगों के संदर्भ में सुप्रीम कोर्ट को पहले काफी सख्त टिप्पणियां करनी पड़ी थीं। इसके बावजूद राज्य सरकार 'राजधर्म' निभाने को प्रेरित नहीं हुई है। उलटे मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी सांप्रदायिक आधार पर गोलबंदी की अपनी राजनीतिक पूंजी को सहेजने में लगे रहे हैं और उससे बनी उनकी ताकत के आधार पर भाजपा के नेता अब उन्हें 2014 में प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार के रूप में पेश करने की घोषणा करने लगे हैं।

इन और इनके जैसे बहुत सारे घटनाक्रमों को एक साथ जोड़ कर देखें तो एक ऐसी राजनीति की सूरत उभरती है, जिसका भारतीय संविधान की मूल भावना से अंतर्विरोध लक्षित होता है। दरअसल, लोकतंत्र और मानवाधिकारों की आधुनिक भावना पर आधारित एक सर्व-समावेशी संविधान के तहत चल रही व्यवस्था में धार्मिक और वर्चस्ववादी नीतियों के आधार पर राजनीतिक गोलबंदी भारतीय जनता पार्टी की सियासत का एक ऐसा पहलू है, जो उसे सबसे अलग पहचान देती है। सार्वजनिक जीवन में स्वच्छता और विकास और प्रगति की खास नीतियों के आधार पर भले अब भाजपा के 'पार्टी विद डिफरेंस' (यानी सबसे अलग पार्टी) होने के दावे पर कोई भरोसा न करता हो, लेकिन इस दूसरे अर्थ में वह जरूर एक ऐसी पार्टी है। इस अर्थ में कि वह भारत की परिकल्पना के दो प्रतिस्पर्धी विचारों में से एक का प्रतिनिधित्व करती है। इसीलिए उसका राजनीति में एक बड़ी ताकत बने रहना एक ऐसी परिस्थिति पैदा करता है, जिसकी वजह से जनता के व्यापक हितों की समझ के आधार पर सकारात्मक या प्रगतिशील राजनीति की तरफ बढ़ने का मार्ग अक्सर अवरुद्ध हो जाता है।

मसलन, कांग्रेस इस वक्त किस विचार का प्रतिनिधित्व करती है, सकारात्मक तर्कों से इसे समझाना मुश्किल हो सकता है। लेकिन जब ध्यान उसके आज के सबसे बड़े प्रतिद्वंद्वी दल यानी भाजपा पर जाता है, तो वैचारिक और राजनीतिक वर्ग-चरित्र से जुड़े तमाम सवालों से घिरे होने के बावजूद भारत के दीर्घकालिक भविष्य के संदर्भ में कांग्रेस न सिर्फ प्रासंगिक, बल्कि एक हद तक जरूरी ताकत महसूस होने लगती है। कारण यह कि पिछले करीब डेढ़ सौ सालों में विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक संघर्षों से जिस भारतीय राष्ट्रवाद या भारत के जिस विचार का उदय हुआ, वह आज भी तमाम खतरों से मुक्त नहीं है। उसके लिए जो सबसे बड़ा खतरा है, फिलहाल राजनीति में उसकी नुमाइंदगी भाजपा करती है। चूंकि उसके सत्ता में लौटने की गुंजाइश लगातार बनी हुई है, इसलिए उदात्त भारतीय राष्ट्रवाद की रक्षा और उसके विकास के संदर्भ में कांग्रेस की भूमिका भी कायम है।

आखिर वह भारतीय राष्ट्रवाद क्या है, और भाजपा क्यों उसकी एंटी-थीसिस (यानी प्रतिवाद) है? इसे हम भारतीय राष्ट्रवाद के उदय के ऐतिहासिक क्रम और इसके मुख्य आधार बिंदुओं का उल्लेख करते हुए और भाजपा की मूलभूत मान्यताओं के बरक्स उन्हें रखते हुए आसानी से समझ सकते हैं।

आधुनिक भारत का विचार- जिसकी अभिव्यक्ति हमारे संविधान में हुई- भारतीय जनता के आर्थिक हितों के साझापन की एक व्यापक समझ के साथ आगे बढ़ा। इसके आरंभिक सूत्र ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हाथों भारत के आर्थिक शोषण के बारे में दादाभाई नौरोजी के गहरे विश्लेषण से निकले, जिसका निहितार्थ यह रहा कि हमें आजादी इसलिए चाहिए, क्योंकि यह हम सबके आर्थिक हित में है। नवजागरण के मनीषियों ने जिस सर्व-समावेशी समाज और दिमागी खुलेपन की संस्कृति पर जोर दिया, वह इस राष्ट्रवाद का दूसरा आधार है। इसका निहितार्थ है कि भारत में जन्मा हर शख्स यहां का बाशिंदा है और उनके बीच धर्म, जाति, नस्ल या किसी अन्य आधार पर कोई भेदभाव नहीं हो सकता। इसमें तीसरा पहलू लोकतंत्र का जुड़ा, जो हमारे स्वतंत्रता संग्राम में व्यापक जन भागीदारी, उससे पैदा हुई जन चेतना, और विभिन्न विचारधाराओं के संघर्ष और समन्वय की परिणति है। और चौथा आधार विकास का वह झंडा है, जिसे लेकर आजादी के बाद यह राष्ट्र आगे बढ़ा।

कांग्रेस आज समूचे भारतीय जन के आर्थिक हितों की नुमाइंदगी करती है, यह शायद ही कहा जा सकता है। सर्व-समावेशी धारणा में उसकी आस्था संदिग्ध है, क्योंकि उस पर चौरासी के सिख विरोधी दंगों का दाग है और उस पर अनेक मौकों पर सांप्रदायिक कार्ड खेलने के विश्वसनीय आरोप हैं। आदर्श रूप में पार्टी का स्वरूप लोकतांत्रिक नहीं है, यह उसके वंशानुगत नेतृत्व से जाहिर है। और आज उसका जो विकास संबंधी झंडा है, वह प्रभुत्वशाली तबकों के हितों में झुका हुआ है।

मगर ये तमाम बातें उस समय छोटी हो जाती हैं, जब उसके सामने भाजपा खड़ी दिखती है। इसलिए कि भाजपा मूल रूप से आधुनिक राष्ट्रवाद की धारणा को ही चुनौती देने वाली शक्ति है। वह जिस संघ परिवार का हिस्सा है, उसकी राष्ट्रवाद की समझ में आर्थिक हितों के साझापन, सर्व-समावेशी स्वरूप, प्रगतिशील लोकतंत्र और जनपक्षीय विकास की कोई जगह नहीं है।

इसके विपरीत यह राष्ट्रवाद कथित सांस्कृतिक आधार से परिभाषित होता है। सीधे शब्दों में कहें तो इसका अर्थ पुरातन हिंदू संस्कृति है। यह संस्कृति अपने आप में एक विवादास्पद धारणा है, लेकिन अगर कोई राष्ट्रवाद मजहबी संस्कृति पर खड़ा होगा, तो स्वाभाविक रूप से उसमें उन लोगों के लिए कोई

जगह नहीं होगी जो उस संस्कृति का हिस्सा नहीं होंगे। उसमें बहुत-से लोगों का स्थान उस सांस्कृतिक मान्यता के मुताबिक श्रेणी-क्रम में ऊपर या नीचे तय हो जाएगा। इसलिए यह राष्ट्रवाद सिर्फ धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए नहीं, बल्कि दलितों, पिछड़ी जातियों, महिलाओं और आधुनिक-खयाल तमाम लोगों के लिए एक चुनौती है।

यह कथन कि व्यावहारिक राजनीति की मजबूरियां भाजपा को एक सामान्य राजनीतिक दल बना देती हैं और सत्ता की चाह में उसकी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विचारधारा अप्रासंगिक हो जाती है, अनुभव से सिद्ध नहीं है। बल्कि आज भी यह गौरतलब है कि भाजपा किन मुद्दों पर वोट मांगती है? उसके मुख्य मुद्दे अयोध्या में राम मंदिर का निर्माण, समान नागरिक संहिता और संविधान की धारा 370 की समाप्ति हैं। उत्तर प्रदेश के मौजूदा चुनाव में भी पार्टी के वादों में अयोध्या में विशाल राम मंदिर के निर्माण की बात शामिल है।

इसके अलावा गो-रक्षा, स्कूलों में सूर्य नमस्कार और गीता की पढ़ाई थोपना, पाठ्यक्रम में अंधविश्वास भरी विषयवस्तुओं के जगह देना और विकास की धारणा के पूर्णत: अभिजात्य हितों के मुताबिक प्रस्तुत करना भाजपा शासन में रोजमर्रा के अनुभव हैं। दरअसल, खुद भाजपा इन मुद्दों के अपनी खास पहचान मानती है। जाहिर है, इनके आधार पर ही बहुमत जुटा कर वह सत्ता में आना चाहती है। इस परिप्रेक्ष्य में नरेंद्र मोदी पार्टी में कोई अपवाद नहीं, बल्कि उसके सबसे स्पष्ट प्रतीक हैं।

इस राजनीति में जोर-जबरदस्ती का तत्त्व नैसर्गिक रूप से शामिल है, क्योंकि उसके जरिए ही कोई जीवन-शैली या संस्कृति किसी अन्य पर थोपी जा सकती है। इसलिए वेलेंटाइन डे मना रहे लोगों पर हमला या कला-संस्कृति या अभिव्यक्ति के दूसरे माध्यमों की आजादी को प्रतिबंधित करने की प्रवृत्ति कोई अलग-थलग रुझान नहीं, बल्कि इस विचारधारा का अभिन्न अंग है।

सन 1980 के दशक तक भाजपा की ताकत हाशिये पर थी। लेकिन राम जन्मभूमि आंदोलन और बाबरी मस्जिद के ध्वंस के बाद बनी परिस्थितियों में वह देश की प्रमुख राजनीतिक शक्ति बन गई। इसके साथ राजनीति में वह विभाजन रेखा (फॉल्टलाइन) सबसे प्रमुख हो गई, जिसके आधार पर भाजपा एक तरफ और बहुसंख्यक वर्चस्ववाद विरोधी ताकतें दूसरी तरफ खड़ी दिखती हैं। चूंकि 1990 के दशक के घटनाक्रम ने भाजपा को केंद्र की सत्ता में पहुंचा दिया और सत्ता का अपना गतिशास्त्र होता है, इसलिए बहुत-से ऐसे दल, जो मूल रूप से संघी राष्ट्रवाद से सहमत नहीं हैं, भाजपा के सहयोगी बन गए। सांप्रदायिकता की विभाजन रेखा की इस अनदेखी ने सबको न्याय और सबके साथ लेकर चलने वाले राष्ट्रवाद के लिए गंभीर चुनौती पैदा कर दी। चूंकि यह स्थिति आज भी कायम है, इसीलिए भारतीय जनता के व्यापक और दीर्घकालिक हित में संसदीय राजनीति के भीतर उस धुरी की प्रासंगिकता कायम है, जिसका नेतृत्व कांग्रेस करती है। अगर देश में दो धर्मनिरपेक्ष विकल्प होते, तो निस्संदेह जन-पक्षीय नीतियों और व्यापक जनतांत्रिक कार्यक्रम से तय होने वाली विभाजन रेखा के आधार पर राजनीतिक रुख या मतदान का फैसला करने की सुविधाजनक स्थिति होती।

उस निर्णय में अपनी मौजूदा नीतियों और वर्ग-चरित्र के कारण कांग्रेस संभवत: किसी प्रगतिशील शक्ति की पसंद नहीं होती। मगर मुश्किल यह है कि 1990 के दशक में जब भाजपा के नेतृत्व में सांप्रदायिक धुर दक्षिणपंथी शक्तियां उभार पर थीं, उस समय भी अपना किला मजबूत रखने वाली वामपंथी ताकतें आज कमजोर हो चुकी हैं। ऐसे में शासन की नीतियों को वाम झुकाव देने की चुनौती और गहरी हो गई है।

इस परिस्थिति में आधुनिकता और प्रगतिशीलता के अर्थ में राष्ट्र-भक्त और जन-पक्षीय लोगों के सामने पहला लक्ष्य भारत के आधुनिक विचार की रक्षा और भारतीय राज्य-व्यवस्था को राष्ट्रवाद के उस सिद्धांत पर टिका रखना है, जो न्यायपूर्ण समाज के निर्माण की एक अनिवार्य शर्त है। कम्युनिस्ट विचारधारा में वस्तुगत परिस्थितियों के वस्तुगत विश्लेषण का सिद्धांत बहुमूल्य माना जाता है। इस सिद्धांत को अगर आज हम अपने हालात पर लागू करें, तो उससे यही समझ निकलती है कि धर्मनिरपेक्ष-लोकतंत्र और संवैधानिक व्यवस्था की रक्षा और समाज के उत्तरोत्तर लोकतंत्रीकरण के संदर्भ में उन तमाम शक्तियों की आवश्यकता बनी हुई है, जो भाजपा के खेमे में नहीं हैं। जब तक भाजपा के राष्ट्रवाद को परास्त नहीं कर दिया जाता, भारतीय राष्ट्रवाद की यह मजबूरी बनी रहेगी।

मगर यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि भारतीय राजनीति की इस प्रमुख विभाजन रेखा की प्रासंगिकता की समझ कांग्रेस और अन्य धर्मनिरपेक्ष शक्तियों में हाल के वर्षों में धुंधली होती गई है। इसके लिए काफी हद तक कांग्रेस नेतृत्व वाले यूपीए की नीतियां जिम्मेदार हैं, लेकिन इसकी कुछ जिम्मेदारी उन पार्टियों की भी है जिन्होंने फौरी राजनीतिक फायदों को दीर्घकालिक उद्देश्यों पर ज्यादा तरजीह दी है। बहरहाल, यह पूरे धर्मनिरपेक्ष खेमे के लिए विचारणीय प्रश्न है कि क्या इस क्रम में भारत की आधुनिक लोकतांत्रिक और प्रगतिशील संकल्पना के लिए खतरा और संगीन नहीं होता जा रहा है?